

“वर्तमान भारतीय राजनीति में जातिवाद की भूमिका : एक राजनीतिक विश्लेषण ”

डॉ० जितेन्द्र बहादुर सिंह
एसो०प्रो० – राजनीति विज्ञान
पं० राम लखन शुक्ल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
आलापुर, अम्बेडकरनगर, उ०प्र०

सारांश

वर्तमान भारत के राजनीतिक संरचना की बात की जाए तो, भारत बहुदलीय लोकतंत्र वाला एक देश है। इसके अलावा यदि हम प्राकृतिक तथा सामाजिक तौर पर भी देखें तो भारत विभिन्न प्राकृतिक विभागों तथा विभिन्न प्रकार के सामाजिक संगठनों वाला देश है। हमारे देश में हर तरह से विविधता में एकता है। हम उत्तर से लेकर दक्षिण तक कई जाति, पंथ, समुदाय तथा समूहों में बटें हुए हैं। ऐसी परिस्थिति में भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह उभरकर सामने आती है कि, भारत जैसे विशाल देश जिस प्रकार धर्म, संस्कृति, समूह, तथा सभ्यता के मामले में बहुरंगी है, उसी प्रकार राजनैतिक तौर पर भी भारत में व्यापक भिन्नतायें देखने को मिलती हैं। हम उत्तर से दक्षिण या पूरब से पश्चिम भारत में कहीं भी नजर उठा कर देखें तो हम पाते हैं कि, भारत में हर क्षेत्र के व्यक्ति में राजनीति के प्रति दृष्टिकोण अलग-अलग है। ऐसी परिस्थिति में भारत जैसा बहुदलीय राजनैतिक दल वाला देश उन सभी समूहों के लोगों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व करता है।

भारत जैसे विविधता पूर्ण देश में यह अवश्यंभावी हो जाता है कि, यहां के राजनीतिक दल क्षेत्रीय मुद्दों के साथ-साथ उन मुद्दों का भी समावेश राजनीति में करें, जो मुद्दे ज्वलंत हैं तथा समाज से जुड़े हुए हैं। ऐसा ही एक मुद्दा जातिवाद है। भारतीय राजनीति में जातिवाद कोई नई परिकल्पना नहीं है, अपितु अंग्रेजी राज्य में भी 1931 ईस्वी में जब भारत में प्रथम बार जातिगत जनगणना कराई गई तो वहां भी अंग्रेजों की मनसा यही थी कि, भारतीय राजनीति में जाति का समावेश किया जाए। यहां गौर करने वाली बात यह है उस दौर में अंग्रेजी शासन विदेशी शासन था तथा उनका मंतव्य भारत का शोषण करना था।

1909 के मार्ले – मिंटो सुधार के माध्यम से भारत में राजनीति के क्षेत्र में धर्म का समावेश कर ही चुके थे। जिसका असर 1920 ईस्वी के बाद दिखने लगा था। ऐसी परिस्थिति में उन्हें डर था कि केवल धर्म के आधार पर भारत को बांट कर उस पर शासन नहीं किया जा सकता है। अतः राजनीतिक आकांक्षाओं को जगाकर उसमें जाति का समावेश करके ही भारत पर शासन किया जा सकता है। इसीलिए उन्होंने भारत में जातिगत जनगणना करवायी। वह ऐसा करने में तत्काल सफल नहीं हो सकी क्योंकि उस दौर में कांग्रेस सहित सभी दलों में जातिवाद तो था, लेकिन उसका विरोध भी उसी प्रकार होता था। दूसरा कारण यह था कि एक तरफ जहां भीमराव अंबेडकर जी द्वारा जातिगत उत्थान की बातें की जा रही थीं तो दूसरी तरफ गांधी जी भी अपने प्रयास से निम्न जातियों के उत्थान में लगे हुए थे। अंग्रेजों की यह चाल सफल नहीं हो सकी। 1947 में जब भारत आजाद हुआ तब से लेकर 1960 के दशक तक भारतीय राजनीति में जातिवाद प्रत्यक्ष होकर कभी उपस्थित नहीं रहा, क्योंकि भारतीय संविधान में जिस प्रकार आरक्षण दिया गया था उससे तत्काल जातिवाद का विकास संभव नहीं था। दूसरी तरफ उस दौर में राष्ट्रीय दलों का प्रभुत्व राजनीति में आधिक था। जिसके कारण जातिवाद विकसित नहीं हो सकता लेकिन धीरे-धीरे भारतीय राजनीति में जातिवाद का विकास होने लगा।

भारत में विद्यमान जातिवाद ने न केवल यहाँ की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक प्रवृत्तियों को ही प्रभावित किया अपितु राजनीति को भी पूर्ण रूप से प्रभावित किया है। जाति के आधार पर भेदभाव भारत में स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व भी था किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रजातन्त्र की स्थापना होने पर समझा गया कि जातिगत भेद मिट जाएगा किन्तु ऐसा नहीं हुआ।

राजनीतिक संस्थाएं भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी परिणामस्वरूप जाति का राजनीतिकरण हो गया। भारत की राजनीति में जाति ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। केन्द्र ही नहीं राज्यस्तरीय राजनीति भी जातिवाद से प्रभावित है जो लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिए सबसे खतरनाक बात है क्योंकि राष्ट्रीय एकता एवं विकास मार्ग अवरुद्ध हो रहा है।

भारतीय राजनीति में जातिवाद के समावेश में सबसे बड़ी भूमिका क्षेत्रीय दलों की है। क्योंकि हमारे देश में जितने भी क्षेत्रीय दल थे वह किसी न किसी रूप से अपने क्षेत्र में सत्ता को प्राप्त करना चाहते थे। उनकी परिकल्पना

पूरी राष्ट्र के लिए नहीं थी। अतः वे यह मानकर चलते थे कि हम देश नहीं बल्कि क्षेत्रीय स्तर पर आगे बढ़ सकते हैं। हर क्षेत्रीय नेता किसी न किसी समुदाय से आता था। इसीलिए प्रारंभ में उसने अपने समुदाय के विकास की बात को राजनीति के माध्यम से उठाना प्रारंभ कर दिया। बाद में इस मुद्दे में जाति जुड़ती चली गई जिसका उदाहरण हम बिहार में राष्ट्रीय जनता दल, उत्तर प्रदेश में लोक दल, समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी आदि के रूप में देख सकते हैं। वही दक्षिण भारत में राजनीति पर अपना वर्चस्व बढ़ाने के लिए इन राजनीतिक दलों ने एक या एक से अधिक जातियों के समीकरण को अपने साथ जोड़ कर आगे बढ़ाना प्रारंभ किया। वह अक्सर जातिगत मुद्दे उठाकर भारतीय राजनीति को क्षेत्रीयता के भाव से प्रभावित करने में लगे रहे।

राजनीति पर जाति व्यवस्था का प्रभाव समय के साथ-साथ बढ़ रहा है लेकिन जाति व्यवस्था का रूप परिवर्तित होता रहता है। स्वतंत्रता के बाद भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जाति का प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ा है अतः भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का अध्ययन निम्न अनुसार किया जा सकता है। 1. जाति प्रधान राजनीतिक दलों का विकास-राजनीति के अंतर्गत सफलता प्राप्त करने के लिए जाति प्रधान राजनीतिक दलों का विकास हो रहा है। यह जनता की भावनाओं को उभार कर राजनीतिक लाभ उठाते हैं और उसी के आधार पर चुनाव जीतने का प्रयास करते हैं जैसे लोकदल पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, समाजवादी पार्टी आदि।

2. जाति के आधार पर चुनाव क्षेत्र में उम्मीदवारों का चयन करना।

3. राजनीतिक दलों द्वारा जातिगत आरक्षण के माध्यम से हितों को पूरा करने की होड़।

4. मंत्रिमंडल के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व जैसे ब्राह्मण, जाट, राजपूत, कायस्थ, दलित व पिछड़े आदि।

5. निर्णय प्रक्रिया में जाति की भूमिका-जाति संगठन अपने हितों के अनुसार निर्णय करने तथा अपने हितों के प्रतिकूल होने वाले निर्णयों को रोकने हेतु निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।

6. जाति एवं प्रशासन-भारत में प्रतिनिधि संस्थाओं के अलावा प्रशासन में भी जातिगत आरक्षण की व्यवस्था की गई है अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति के अलावा अन्य पिछड़े वर्गों को भी आरक्षण दिया गया है।

7. चुनाव प्रचार में जाति का सहारा-राजनीतिक दल एवं उम्मीदवार चुनाव प्रचार में जाति का खुलकर प्रयोग करते हैं चुनाव के समय जातीय समीकरण बैठाए जाते हैं। प्रत्येक राजनीतिक दल क्षेत्र विशेष में जिस जाति का बाहुल्य है उसमें उसी जाति के बड़े नेता का चुनाव प्रचार हेतु भेजने का प्रयत्न करते हैं।

8. जाति के आधार पर राजनीतिक अभिजनों का उदय जो लोग जाति संगठनों में उच्च पदों पर पहुंच गए हैं वे ही राजनीति में भी अच्छे स्थान प्राप्त करने में सफल हुए हैं ऐसे लोग राजनीति में चाहे खुलकर जातिवाद का सहारा ना लें फिर भी यह अपनी पृष्ठभूमि को नहीं भूलते। वे अपने जातिगत हितों की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पैरवी करते रहते हैं।

राजनीतिक दलों ने जब जनता को सम्मोहित करने में अपने आप को असमर्थ महसूस किया तब राजनीति का खेल खेलने के लिए नेताओं ने राजनीति में जातिवाद का सहारा लिया। दलित शोषित के उत्थान की आड़ में जातिवाद को राजनीति का अनिवार्य अंग बना दिया। जातिवाद के कारण जहां राज्य का उद्देश्य जनकल्याण का था उसको बदलकर रख दिया उसका वास्तविक उद्देश्य विभिन्न जातियों को संतुष्ट करने का रह गया। राजनीतिक दलों ने जातियों को वोट बैंक के रूप में हमेशा प्रयुक्त किया है।

निष्कर्ष :- सामान्यतया भारतीय राजनीति में जाति के प्रभाव की तीव्र आलोचना की जाती रही है और इसे राष्ट्रीयता के लिए घातक समझा जाता रहा है, लेकिन इसका एक अन्य पक्ष भी है। एक ओर तो जाति ने समाज को टुकड़ों में विभक्त करने वाले तत्व की भूमिका अदा की है, तो दूसरी ओर इसने संयुक्त करने वाले तत्व की भी भूमिका अदा की है। भारतीय समाज में जाति प्रभावपूर्ण सम्पर्क-सूत्र का कार्य और नेतृत्व और संगठन को आधार प्रदान करती है। यह उन व्यक्तियों को भी लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में भाग लेने की क्षमता प्रदान करती है जो निम्न जातियों के कहे जाते हैं।

अतः राजनीति में समाज व्यवस्था के दोषों को बढ़ावा देकर उसे परस्पर जाति संघर्ष एवं वैमनस्यता की आग में डाल दिया जिस पर राजनेता अपने हाथ संकते रहे हैं। जातिवाद में लोकतंत्र की धारणा के विरुद्ध काम किया है। जाति व्यवस्था में राष्ट्र के एकीकृत स्वरूप के लिए संकट पैदा कर दिया है। फिर भी यह सत्य है कि जाति भारत के समाज की महत्वपूर्ण इकाई जिसकी उपेक्षा करना आसान नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि जाति के नकारात्मक स्वरूप के स्थान पर सकारात्मक स्वरूप की स्थापना की जाए। रूडोल्फ के अनुसार “जाति व्यवस्था ने जातियों के राजनीतिकरण में सहयोग देकर परंपरावादी व्यवस्था को आधुनिकता में डालने का कार्य किया।”

जाति का राजनीतिकरण भारत के आधुनिकीकरण के मार्ग में बहुत बड़ा बाधक सिद्ध हो रहा है, क्योंकि जाति को राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सद्भाव एवं समरसता का निर्माण करने हेतु आधार नहीं बनाया जा सकता। वैसे तो संविधान द्वारा अस्पृश्यता को लेकर अनेकों कानून बनाए गए, परन्तु जाति – विहीन समाज की स्थापना संविधान की अंतरात्मा नहीं बन पाई। अस्पृश्यता समाप्त कर दी गई परन्तु जाति व्यवस्था स्वयं बनी रही।

अनुच्छेद 17 का अम्बेडकर द्वारा किया गया प्रारूप यह था कि पद, जन्म, व्यक्ति, परिवार, धर्म या धार्मिक रूढ़ि और रीति-रिवाज से उत्पन्न किसी विशेषाधिकार या नियोग्यता को समाप्त किया जाता है, परंतु इसे न तो प्रारूप समिति ने स्वीकार किया और न ही संविधान सभा ने स्वीकार किया। बिना चर्तुवर्ण या जाति का नाम लिए अम्बेडकर ने इस पर आधारित विशेषाधिकारों या नियोग्यताओं को समाप्त करने का प्रयास किया था, यदि उसे स्वीकार किया गया होता तो वह सामाजिक समता तथा सामाजिक न्याय की अवधारणा के ज्यादा करीब होता।

वर्तमान संविधान का अनुच्छेद – 17 30 के0 एम0 मुंशी के प्रारूप पर आधारित है। इसके पूर्व 1930 के दशक में मंदिर प्रवेश के लिए हरिजनों को प्रदान की जाने वाली व्यवस्था पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अम्बेडकर ने स्पष्ट किया था, कि यदि हिन्दू धर्म उनका धर्म होना है, तो उसे सामाजिक एकता का धर्म होना होगा। मात्र हिन्दू संहिता का संशोधन कर मंदिरों में प्रवेश दिलाना पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता है कि जाति व्यवस्था तथा अस्पृश्यता के जनक चर्तुवर्ण के सिद्धांत को समाप्त किया जाय।

संदर्भ ग्रंथ

1. प्रताप, भानु मेहता, द बर्डेन ऑफ डेमोक्रेसी डं बुक्स, लंदन 2003।
2. कोठारी, रजनी, (संपादित), कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 1970।
3. गुहा, रामचंद्र, मेकर्स ऑफ मॉडर्न इंडिया, पेंग्विन बुक्स, लंदन, 2012।
4. गुहा, रामचंद्र, भारत, नेहरू के बाद, पेंग्विन बुक्स, लंदन, 2012।
5. श्रीनिवासन, एम0एन0, भारत में जाति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016।